हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों का बदलता स्वरूप

निर्मल सिंह
संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

शास्त्रीय संगीत

प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत बहुत समृद्ध रहा है। मतंग देव के समय तक के समयकाल को प्राचीन काल कहा जा सकता है। इसके भी दो अन्तर्विभाग हैं– 1) भरत से पूर्व का काल 2) भरतोत्तर काल। अर्थात उदातादि के समय काल से ग्राम, मूर्च्छना, जाति तथा वैदिक गान मन्त्र आदि का समय भरत के पूर्वकाल का माना जाता है। राग आदि का विकास भरत के बाद हुआ। वास्तव में 'संगीत रत्नाकर' के परवर्ती काल मे ही संगीत स्वतन्त्र कला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

यदि इतिहास को देखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि 12वी. व 13वी. शताब्दी तक सम्पूर्ण भारत में संगीत का रूप व उसकी रीति लगभग एक समान थी। परन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण भारत की बहुत सी धार्मिक और कला सम्बन्धी सम्प्रदाय व संस्थाएं मिट गई थी। आक्रमणकारी अधिकतर भारत के उत्तरी भाग पर हुए जिसके फलस्वरूप यहां का संगीत अत्यधिक प्रभावित हुआ और संगीत की दो अलग धाराओं का निर्माण हुआ जिसे उत्तरी व दक्षिणी संगीत के नाम से जाना गया। समय परिवर्तन के साथ–साथ दोनों संगीत धाराओं के वाद्यों के स्वरूप में परिवर्तन होना भी स्वाभाविक ही था।

परिवर्तन

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। प्रकृति का कण–कण इस परिवर्तन से प्रभावित है। नीले सूने आकाश पर सहसा बादलों का घिर आना फिर पलभर में ही पुनः सूर्य का प्रकट होना परिवर्तन का द्योतक है। यही परिवर्तन हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों पर भी देखा गया जिसका वर्णन निम्न है–

रूद्र वीणा

वीणा प्राचीन शब्द है। प्राचीन काल में सभी तन्तु वाद्यों को वीणा संज्ञा दी गई। प्राचीन काल में वीणा के तार कुश, मूंज, तांत, रेशम को बुनकर बनाए जाते थे। रूद्र वीणा के वर्तमान स्वरूप का वर्णन हमें लगभग 15 शताब्दी से प्राप्त होना शुरू होता है। रूद्रवीणा का नाम सर्वप्रथम नारदकृत 'संगीत मकरन्द' (8वी. शताब्दी) में प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 13वी. शताब्दी में रचित 'संगीत रत्नाकर' में 14 अचल पर्दो व 3 तुम्बों वाली वीणा का उल्लेख मिलता है परन्तु यह किन्नरी वीणा का उल्लेख था। वर्तमान स्वरूप में रूद्र वीणा का वर्णन पं. सोमनाथ कृत 'राग विबोध' (1631) पं. हृदयनारायण देव कृत 'हृदयप्रकाश एवं हृदयकौतुक' (17 वी.), पं. अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' (1651 लगभग) ग्रन्थों में प्राप्त होता है। रूद्रवीणा का यह वर्णन आधुनिक प्रचलित वीणा का विकसित एवं परिवर्धित रूप माना जा सकता है।

डाण्ड वांस या आबनूस की लकड़ी से निर्मित होता था जिसे 'अस्थान' या 'स्थान' कहते थे। इसकी लम्बाई साढ़े तीन फुट एवं चौड़ाई ढाई इंच होती थी। डाण्ड के नीचे दो तुम्बे लगे होते थे। पर्दों का निर्माण लकड़ी से होता था, जिसके ऊपर धातु की पत्ती रखी जाती थी, जिसे 'लग्गा' कहते हैं। इनको लाक़ से डाण्ड पर स्थिर किया जाता था। पर्दों की संख्या 19–24 तक होती है परन्तु कलाकार अपनी इच्छानुसार इनकी संख्या का चुनाव करते हैं। प्राचीन काल में देशी तारें प्रयोग की जाती थी जो पर्दों पर निशान बना देती थी और जल्दी टूट भी जाती थी। वीणा में सात तारें प्रयुक्त होती थी।

आधुनिक समय में बांस के स्थान पर टीक की लकड़ी का प्रयोग होने लगा है। यह डाण्ड अधिक समय तक चलता है। इससे इसकी आवाज़ भी उत्तम दर्ज़े की हो गई। आधुनिक समय में पर्दे शीशम जैसी उत्तम गुणवत्ता वाली लकड़ी के लगाए जाते हैं तथा पर्दों के ऊपर पीतल के स्थान पर स्टील या तांबे का प्रयोग किया जाने लगा। पर्दों को आजकल धागे से बांधकर सितार की भांति चलथाट वाली वीणा बना दिया है। देशी तारों के जल्दी टूटनें के कारण आजकल विदेशी तारों का प्रयोग किया जाता है जिनमें जर्मन की तारें प्रमुख हैं।

सितार

पहले जहां दो तुम्बों का सितार प्रयोग किया जाता था, वहीं आजकल एक ही तुम्बा प्रयोग किया जाता है जिसका कारण तकनीकी विकास है। तुम्बे वाद्यों की गूंज बढ़ाने के लिए प्रयोग किए जाते थे। पर्दे पहले अचल होते थे परन्तु आजकल चलथाट वाली सितारों का प्रयोग ज़्यादा किया जाता है। पहले समय में तबली का कोई निश्चित माप नहीं होता था, पहले केवल गत–तोड़े का ही सितार पर वादन होता था। इसलिए हल्की तबली रखी जाती थी। पहले सितार में सादी खूंटियों का प्रयोग किया जाता था परन्तु आधुनिक समय में गुलाब के आकार की, सादा आकार, कमरख या लहसुनियां एवं कमल के आकारकी खूंटियां प्रयोग की जाती हैं तथा तबली भी मापानुसार ही बनती जाती है। पहले चपटे ब्रिज लगाऐ जाते थे, जिनकी ज्वारी करना कठिन था परन्तु आधुनिक वाद्य निर्माताओं एवं सितार वादकों ने ज्वारी की ध्वनि के आधार पर तीन श्रेणियां बनाई हैं–खुली ज्वारी, बन्द ज्वारी और गोल ज्वारी। पहले के सितारों में सामान्यतः खुली ज्वारी का ही प्रचलन था। प्राचीन काल में लंगोट जहां बारहसिंगा की हड्डी का प्रयोग होता था वहीं आज प्राकृतिक पदार्थों की अनुपलब्धता (बारहसिंगा की हड्डी) के कारण पीतल धातु का प्रयोग किया जाता है। सितार के प्रारंभिक रूप में तीन तारों का प्रयोग होता था। मसीत खां ने एक तार जोड़ी व एक तार पंचम का जोड़ कर पांच तारों वाला सितार बना दिया। तत्पश्चात् 1871 में दिल्ली में 6 तारों वाले सितार का वर्णन मिलता है। परन्तु आज के समय में सितार में साधारणतः 6–7 मुख्य तारें एवं 11–13 तरब की तारें लगी होती हैं। आज सभी कलाकार मुख्य तारों एवं तरब की तारों की संख्या, तारों की धातु व गेज नम्बर अपनी शैली एवं वादन के अनुरूप ही रखते हैं। प्राचीन समय मे बाज़ की तार का नम्बर प्रायः एक होता था। तत्पश्चात् दो फिर आधुनिक समय में सितार मे तीन नं. का बाज का तार

लगाया जाता है जिनसे 5 स्वरों की मींड आसानी से खींची जा सकती है। प्राचीन तारें देशी थी परन्तु आजकल विदेशी तारें प्रयोग की जाती है।

सरोद

भारतीय शास्त्रीय संगीत में सरोद वाद्य का एक अपना अलग ही स्थान है। सरोद के अविष्कार का श्रेय दो अफ़गानी रबाब वादक नियामतुल्ला खां के वंशज एवं गुलाम अलि के वंशज अपने–अपने पूर्व पुरूषों को देते हैं। विद्वानों का मत है कि सरोद वाद्य मध्यकालीन वाद्य सेनिया रबाब एवं अफ़गानी रबाब के मिले–जुले लक्षण लेकर विकसित हुआ है।

सरोद का उस समय का आकार, तारों की व्यवस्था, वादन तकनीक, जवा का प्रयोग यह सब तथ्य सरोद का रबाब से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पं. लालमणि मिश्र ने इसका आकार प्राचीन कालीन चित्रा वीणा, मध्यकालीन रबाब तथा 19वी शताब्दी के सुरसिंगार के समान बताया है। माना जाता है कि रबाब वाद्य के प्रभाव से सरोद वाद्य के अनुनादक पर चर्म लगाया गया है। सुरसिंगार वाद्य के समान डाण्ड पर स्टील धातु की पतरी लगाई गई है। सुरसिंगार के समान ही स्टील की तारों का प्रयोग किया गया है। फारसी रबाब में प्रयुक्त तरब की तारों में वृद्धि कर सरोद में 11 से 15 तक तरब की तारें लगाई गई हैं। फारसी रबाब के समान सरोद वाद्य मे पतला ब्रिज लगाया गया, जबकि सेनिया रबाब एवं सुरसिंगार मे रूद्रवीणा के समान चपटा ब्रिज लगा होता है। तदोपरांत संगीतज्ञ निरन्तर सरोद वाद्य में परिवर्तन करते गए या कर रहे हैं। कोई तारों की संख्या कम–ज़्यादा कर रहा है तो कोई अनुनादक को छोटा–बड़ा कर रहा है तथा कोई तरब की तारों की संख्या ज़्यादा–कम कर रहा है।

तानपुरा

तुम्बे का भारतीय धरा पर आगमन 11वी. शताब्दी में पंजाब प्रदेश में गजनबी के समय में हुआ। 13वी. शताब्दी में अमीर खुसरो ने तम्बूर का वर्णन किया है। इसके पश्चात् तम्बूर का सन्दर्भ लगातार बार–बार प्राप्त होता रहा।

प्राचीन दरबारी वाद्य तम्बूर को मुगल सम्राज्य की 'मिनिएचर चित्रकला' में वर्णित किया गया है। इसमें 4 तांत के पर्दे थे, जो डाण्ड से लिपटे हुए थे, 4 तारें (दो तांत व दो सिल्क की) थी। पतली डाण्ड एवं चपटी मुखाकृति थी। भारतीय संगीतज्ञों को आधार स्वर के लिए वाद्य की आवश्यकता थी जिसके चलते तम्बूर से पर्दे हटाए गए अर्थात पर्शियन तम्बूरे जैसा वाद्य तैयार किया गया जो पर्दा रहित था।

आधुनिक समय मे गायक–गायिकाओं के लिए अलग–अलग तानपुरे का प्रयोग किया जाता है। गायकों के लिए तुम्बे का घेरा 55 से 60 इंच तथा गायिकाओं के लिए 45 से 50 इंच तक है। इसी प्रकार गायकों के लिए डाण्ड की लं. 40 तथा गायिकाओं के लिए 36 इंच है। खूंटियां सितार की ही भांति 4 प्रकार की बनाई जाती हैं। तानपुरे के लिए तारें प्राचीन समय में देशी प्रयोग करते थे परन्तु आजकल पश्चिमी जर्मनी की 'रॉसलौव स्टौलज़्हाट' कम्पनी की तारों का प्रयोग करते हैं। वैसे तो तानपुरे के लिए हाथी के दांत की ज्वारी उत्तम मानी जाती है परन्तु अनुपलब्धता के कारण बारहसिंगे

की हड्डी या प्लास्टिक की ज्वारी का भी प्रयोग करते है। आधुनिक समय मे गायक–गायिकाओं के गानें के हिसाब से तारों का नं. व ब्रिज का माप भिन्न–भिन्न होता है। इसी प्रकार अन्य वाद्यों में भी समयानुसार परिवर्तन होते रहे।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि सितार, रूद्रवीणा, सरोद, तानपुरा में ही परिवर्तन नहीं हुए अपितु सभी वाद्यों में परिवर्तन होते रहे। ये परिवर्तन आज भी हो रहे हैं तथा निरन्तर होते रहेंगें। क्योंकि वाद्यों में ज्यादा से ज्यादा गुणवत्ता लानें के लिए ही लगातार परिवर्तन किए जाते हैं जो सही भी है। आजकल नई–नई तकनीकों का विकास हो रहा है जिससे कि इन वाद्यों की गुणवत्ता को निखारनें में आसानी हो रही है। जिस प्रकार प्राचीन कालीन वाद्य आज के वाद्यों से भिन्न नज़र आते हैं, ठीक उसी प्रकार आने वाले समय में भी वाद्यों का स्वरूप आज के स्वरूप की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

निबन्ध संगीत, गर्ग लक्ष्मीनारायण
संगीत सागरिका, बंसल परमानन्द, ज्ञान चन्द
हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियां, शर्मा डॉ. योगिता

Pratibha Spandan